# भारतीय भाषा परिवार और राष्ट्रीय एकता

**शंकर मूर्ति के एन**

प्राध्यापक, हिंदी विभाग, के एल ई जी आई बागेवाडी महाविद्यालय, निपाणी, कर्नाटक.

**DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.18330875**

**ABSTRACT:**

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय भाषा परिवारों की विविधता और राष्ट्रीय एकता में उनकी भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। इसमें भारत के चार प्रमुख भाषाई समूहों (भारोपीय, द्रविड़, ऑस्ट्रिक, चीनी-तिब्बती) का उल्लेख करते हुए, भाषा को केवल 'संप्रेषण का साधन' मानने वाले आधुनिक व पाश्चात्य दृष्टिकोण का तार्किक खंडन किया गया है। लेखक के अनुसार, भाषा एक जीवंत संस्कृति, संस्कारों की वाहक और मानवीय अस्तित्व का आधार है। लेख में 'भारतीयता' को विखंडन के विपरीत एक समग्र, समावेशी और उदार जीवन दर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। आधुनिकता द्वारा थोपे गए व्यक्तिवाद और अलगाववाद की आलोचना करते हुए, यह पत्र निष्कर्ष देता है कि भारतीय साहित्य और भाषा का मूल उद्देश्य समाज में विश्वास, अखंडता और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना है।

**KEYWORDS:**

भारतीय भाषा परिवार, राष्ट्रीय एकता, भारतीयता, भाषाई संस्कृति, समग्र दृष्टि.

भारतीय भाषा परिवार का विवरण, भारतीय भाषाओं का समूहों में वर्गीकरण, भाषा की व्याख्या, महत्व, भारतीय भाषा चिंतन, भारतीयता का अर्थ, राष्ट्रीय एकता, भारतीयता को अखंड रखने के लिए राष्ट्रीय एकता भारतीय भाषाओं की भूमिका।

भारतीय भाषा परिवार को मुख्य रूप से चार बड़े समूहों (भारोपीय, द्रविड़, ऑस्ट्रिक, चीनी-तिब्बती) में बाँटा गया है, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों को दर्शाते हैं, जिनमें उत्तर भारत में मुख्य रूप से आर्य (भारोपीय) भाषाएँ (जैसे हिंदी, बंगाली आदि), दक्षिण में द्रविड़ (तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि), पूर्वोत्तर में चीनी-तिब्बती (नागा, बोडो), और झारखंड/ओडिशा में ऑस्ट्रिक (संथाली, मुंडारी) भाषाएँ प्रमुख हैं, जो देश की भाषाई विविधता और समृद्ध विरासत को दर्शाती हैं।

भारत ने दुनिया को पहला साहित्य दिया था। मौलिक वस्तुओं से भरे दिग्दर्शी साहित्य भी भारत ने ही दिया था। ऐसा भारत अपने ही साहित्य में भारतीयता को ढूँढने की अनिवार्यता का सामना कर रहा है। "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवंतु" - विश्व के सभी जन सुखी रहे- यह भारतीय आशय है। भारतीय हुए सबका आशय है। इसलिए हमारे साहित्य का आशय भी वही है, हम उपनिवेशवाद के प्रभाव से दुनिया के लिए खुलकर जो भारतीय था उसे निम्न मनोभाव से देखने लगे। अपनेपन के खिलाफ़ द्वेष बढ़ाया। अब साहित्य कहने पर वह पश्चिम की देन लगती है। वहाँ पश्चिम की दृष्टि को स्थापित किया है। अब उसका निवारण हटाना है।

कहा जाता है कि भाषा संप्रेषण का एक साधन है। यह आधुनिक भाषा विद्वानों से भाषा के बारे की गयी व्याख्या है। हमारी भावनाएँ, जानकारी औरों को बताने के लिए हमें भाषा आवश्यक है। विज्ञान, तंत्रज्ञान, विचार, तत्त्वज्ञान.... सब भाषा के द्वारा ही संप्रेषित होती है। इसलिए भाषा का अर्थ एक संप्रेषण का साधन है! ठीक है। संप्रेषण साधन ही रहे तो भाषा के बारे में प्रेम, आग्रह, आतंक नहीं होना चाहिए। कुछ भी हो वह एक साधन है। साधन का अर्थ हमें जैसा चाहिए वैसे उपयोग किए जाने वाले, करने वाले बदलने वाली एक वस्तु है। बैठने वाली कुर्सी एक साधन है। उसमें तरह-तरह के हैं। एक को जैसे चाहिए वैसे दूसरा बना सकते हैं। खराब होने पर नया ला सकते हैं। इसमें कोई गलती नहीं है। अपराध नहीं है। अपराध-अधर्म तो बिल्कुल नहीं है। इसी तरह एक संप्रेषण साधन रही भाषा समय समय पर उपयोग हीन होने

पर या तो उसका परिवर्तन कर सकते हैं या बदल सकते हैं। मतलब; कन्नड़ में विज्ञान नहीं सीख सकते। नौकरी नहीं पकड़ सकते समझने पर कन्नड़ को छोड़कर विज्ञान-नौकरी के भरोसे की अंग्रेज़ी को अपना सकते हैं और अब आधुनिक लोग आज यही कर रहे हैं न! ऐसे करने पर ही आधुनिक, बुद्धिमान हो जाते हैं न! 'आफ़्टर ऑल भाषा एक साधन-टूल है' बस! मात्र प्रयोजनशील दुनिया से दिया जाने वाला चिंतन है। यह शुद्ध अभारतीय चिंतन। चिंतन न होनेवाला चिंतन। भाषा एक जड़ है साधन नहीं, बल्कि एक जीवंत संस्कृति है। भाषा का मतलब उपयोग कर फेंकने वाली नीच वस्तु नहीं है। आराधना करनेवाला तत्त्व संकेत है। भाषा को सब सीखते हैं। अपनी-अपनी भाषा को सीखते हैं। बड़ों से खासकर माँ से सीखते हैं। कैसे सीखते हैं? और माताएँ कैसे सिखाती हैं? बच्चा किसी कारण से बुरे शब्द का प्रयोग न करे, ऐसा शब्द उनके कानों पर न पड़े यह सतर्कता लेकर सिखाती हैं। ऐसे शब्द को अगर बच्चे ने उच्चारण किया तो बहुत वेदना अपनाकर उसे ठीक करने और कभी वह ऐसी गलती न करने समान भिन्न करने का यत्न करते हैं। माताओं से बच्चों को सिखाये जाने वाली भाषा में सिर्फ़ भाषा नहीं होती है, संस्कार भी होता है। जब आमना-सामना होते हैं तो कैसे है? ठीक-ठाक है न? आराम है न? कुशल मंगल है न? आदि पूछते हैं। इसमें कौन-सा संप्रेषण है? मात्र संप्रेषण कहे तो इनका उच्चारण करें या न करें! खाना होते देखकर भी खाना हुआ पूछते हैं न! यह कैसा संप्रेषण है? यह कोई संप्रेषण नहीं। यह कोई साधन भी नहीं है। यहाँ मात्र देख-रेख है। मेरे जैसे तू भी एक जीव है का भाव है। भाषा मनुष्य-मनुष्य को बाँधने वाला जीव तंतु है। सामना होने पर एक-दूसरे को प्रणाम कहते हैं न, किसे? चेहरे को, शरीर को, व्यक्तित्व को, पदवी को, साधना को, मशहूरगी को... इसमें कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि दोनों एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं। आपमें रहे पर वस्तु को मेरा नमन है का तत्व, विवेक इस नमन में है। भाषा हमारे निज को हमें दिखाने वाला वस्तु प्रतिनिधि है। भाषा में हमारा अस्तित्व है। अपनापन ढूँढने के लिए हमें अपनी भाषा चाहिए। मतलब हमें कन्नड़ चाहिए, तमिल चाहिए, तेलुगु चाहिए, हिंदी चाहिए... और इन सबका मूल संस्कृत चाहिए। हमें कन्नड़ चाहिए। महाप्राण को नकारा कन्नड़ नहीं है, संस्कृत का द्वेष करनेवाला कन्नड़ नहीं। अंग्रेज़ी को अपनाया कन्नड़ नहीं है। ये सब हमारा अस्तित्व नहीं बना सकते। हमारे अस्तित्व के लिए कोई उन्नत करने वाला देसी कन्नड़ और शुद्ध कन्नड़ हमें चाहिए। भारत माता की तनजात कन्नड़ चाहिए। मात्र संप्रेषण का साधन नहीं है कन्नड़। भाषा के बारे में ऐसे सोच का होना भारतीयता है। हमारे कोई साहित्य

का पुष्पित होना ऐसी भारतीयता से है।

भारतीयता का अर्थ क्या है? क्या नहीं है! जिनको आचरण ही मुख्य है उनको वह आचरण का महाशास्त्र है। जिनको विचार ही प्रमुख है उनको वह एक अद्‌भुत चमक का तर्क शास्त्र है। कर्मशीलों के लिए वह एक कर्मयोग है। भावुक के लिए भक्तियोग है। जिज्ञासु के लिए ज्ञान योग है। यहाँ विज्ञान है। लेकिन वह प्रकृति परक है। यहाँ कला-साहित्य है। लेकिन वह संस्कारवर्धक है। तत्त्वशास्त्र है, लेकिन वह अनुभवनिष्ठ है। उसके लिए एक भौगोलिक सीमा है। लेकिन उसके परे भी वह है। उसके लिए एक परंपरा की चौखट है। उस चौखट के पार भी परंपरा को बढ़ाने की सुविशाल शक्ति है। उसके लिए एक तात्विक भूमिका है। इसी तात्विकता से अपनी बुनियाद को नवीन कर सकता है। कर्मठों के लिए कर्म कांड है। साधकों के लिए राजयोग है। बौद्धों के लिए स्मृतियाँ हैं। वेदांतियों के लिए उपनिषद हैं। अबोध के लिए पुराण-भागवत है। कोई भी कुछ भी ऊँचा नहीं है और नीचा नहीं है। सबको सभी को अपनाने वाली सर्व समावेशकता-भारतीयता है। सबको स्वीकार करता है। न मानने पर भी स्वीकार कर सकते हैं न! सर्व स्वीकार में अज्ञान नहीं है, सर्वज्ञान है। सबके बारे में जानकारी है। यह, एक के बारे में जानकारी होने पर उसके बारे में तकरार पैदा नहीं होगी जैसे है। भारतीयता को किसी से किसी के बारे में विरोध होने पर भी आक्षेप नहीं है। बिना सहन के आक्षेप है। तत्त्व भिन्नता से विरोध है। वाद मान नहीं सकते लेकिन उसका मंडन का निराकरण नहीं कर सकते की उदारता है। भारतीयता का अर्थ ऐसी उदार स्थिति। अपनी उदारता से नष्ट न होने की जागरूकता भी भारतीयता है। भारतीयता का अर्थ जो भी अच्छा है वह सब कुछ है। बुरा कुछ भी नहीं है। यह सीमा पार करके भी सीमा को अपनाने समान है। जीवन के सर्व श्रेष्ठ संभावनाओं को भारतीयता प्रतिनिधित्व करता है। भारतीयता साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। साहित्य जीवन की सब संभावनाओं का वर्णन करने की कला है। श्रेष्ठ संभावनाओं को पहचानने पर वह दिग्दर्शक बन सकता है। "साहित्य में भारतीयता" का अर्थ वह जीवन की दिग्दर्शक साहित्य है।

राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना एक राष्ट्र की सुरक्षा के लिए नितांत आवश्यक है। बनाए नहीं रखा तो उसका परिणाम इस प्रकार होगा। एक घर का बँटवारा होकर चार हुआ। सिर्फ़ घर ही चार नहीं हुआ। घर के बर्तन भी चार हुए। कुर्सी मेज भी चार हुए। टी वी, फ़्रिज़ भी चार हुए। ज़रूरतें चार हुई। इच्छाएँ चार हुई.... ज़रूरतमंद इच्छाएँ

बढ़ बढ़कर इच्छाएँ ही ज़रूरतें हुई। इच्छाओ से बढ़ी आवश्यकता बढ़ बढ़कर अनिवार्य हुई। बँटवारा होकर घर वाले कम होकर खाली हुआ घर वस्तुओं से भर गया।

ज़िंदा इंसान कम हुए। जड़ वस्तुएँ भर गयी। घर की तिजोरी जैसे खाली होती गयी कंपनियों की तिजोरी बढ़ती गयी। घर के बढ़ने और उद्यम के बढ़ने में संबंध है। घर में लोगों की संख्या अधिक होने पर इच्छाएँ भी कम होती हैं। लोगों के कम होने पर इच्छा घी लगायी आग के समान होती है। ज़रूरतें अनिवार्य हुई। आधुनिक नागरिकता की प्रगति का रहस्य जो साथ में हैं, उनके अलग होने में है। उसकी जागरूकता अलग-अलग कर देखने में है। उसका सुख अलग-अलग होने में है। मनुष्य को वह समूह की दृष्टि से, सामाजिक भूमिका से न देखकर निजी रूप से देखकर समझाता है। मनुष्य देह को समग्र रुप से न देखते हुए हर एक अंग को देखकर वैद्य निदान बताता है। विचार को अलग-अलग कर, मतलब विश्लेषण करता है। ऐसे विज्ञानियों से लेकर वैद्य तक, चिंतकों से लेकर उद्यमी तक आधुनिकता के अग्रेसर सबको सब चीज़ों को अलग-अलग कर अध्ययन करने में मग्न हैं। अपना मुनाफ़ा करने में लगे हैं।

मुनाफ़े को ही सुख माननेवाले आधुनिकों का विचार दरिद्रता अब साहित्य के क्षेत्र में भी व्याप्त है। आधुनिक साहित्य से बनाये जाने वाले घर पैसे के मद से भरे हैं। बिना लोगों के मौन हैं। अमीर गरीब को आमने सामने खड़ा कर सिद्धांत का बोध करते हैं। जाति, मत, पंथ, भाषा, प्रदेश आदि भेद की कल्पना कर लड़ाने के लिए तैयार कर रहे हैं। लोगों को समाज के रूप में न देखकर अलग-अलग बनाकर भेद कर, घर का समाज का विघटन कर साहित्य की रचना ज़ोर से चल रही है। मशहूर पुरस्कारों को लूटना चल रहा है। मुनाफ़ाखोर उद्यमों का लक्ष्य ही साहित्य का लक्ष्य हुआ है।

अलग-अलग देखने पर सत्य नहीं दिखता। अलग-अलग होने पर सुख नहीं मिलता। सत्य समग्र है। समग्र दृष्टि से सत्य दिखता है। समग्र जीवन में चैन का अनुभव होता है। कोई एक नहीं सभी सुखी थे कहते हुए हमारे कथानकों का समापन होता है। वहाँ सबका साथ होना वे दिखाते हैं।

**निष्कर्ष:**

सबके एकत्रित होने पर सुख चैन है। वह सबके लौकिक जीवन का लक्ष्य है। वहीं से उसकी परे रहने की साधना करना होगा। साहित्य को

ऐसा जीवन, भरोसेमंद जीवन दिखाना चाहिए। अलग-अलग देखने पर मनुष्य में भी समस्या दिखती है। मनुष्य मनुष्य के बीच समस्या दिखती है। समग्र रूप से देखने पर मनुष्य एक भरोसे का ढेर है। समाज भरोसे का एक पहाड़ है। सृष्टि सत्य के दर्शन करने वाला मंच है। इस सत्य को अनंत मुखों में, अनगिनत आयामों में दिखाना साध्य है। उसे दिखानेवाले साहित्य में भारतीयता होती है।

## संदर्भ ग्रंथ:

1. विहित विद्या- मूल लेखक: श्री नारायण शेविरे, अनुवाद: श्री शंकर मूर्ति के एन, प्रकाशक: पुनरुत्थान सेवा ट्रस्ट, अहमदाबाद, २०२३

**Funding:**

This study was not funded by any grant.

**Conflict of interest:**

The Authors have no conflict of interest to declare that they are relevant to the content of this article.

**About the License:**

© The Authors 2024. The text of this article is open access and licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.